नारी : मानवता का भविष्य

सुरेन्द्र बोथरा

[हिन्दी-अंग्रेजी आदि भाषाओं के विशेषज्ञ—प्रस्तुत ग्रन्थ के सह-सम्पादक]

जैन धर्म मूलतः आत्मिक विकास का धर्म है। वहाँ आत्मशुद्धि गन्तव्य है, ज्ञान उसका प्रशस्त पथ है और अहिंसा का अनुशासन है पाथेय। जैनदर्शन में कर्त्ता व भोक्ता आत्मा है। जीव शब्द भी अधिकांशतः आत्मा के पर्यायवाची के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

महावीर ने ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच कर पाया कि आत्मा एक ऐसा तत्व है जो शक्ति की अनन्त संभावनाओं से युक्त है। साथ ही उन्होंने यह भी अनुभूत किया कि परिणति में अनन्तरूपी होने पर भी संभावनाओं में समस्त ब्रह्माण्ड की प्रत्येक आत्मा समान है। कर्म के फलस्वरूप ज्ञान के विकास और ह्रास के अनुरूप आत्मा का उत्थान और पतन अवश्यम्भावी है। कोई भी आत्मा, सम्पूर्ण आत्म-शुद्धि से पूर्व, इस नियम से परे नहीं हैं। समानता के इसी मूलभूत सिद्धान्त की नींव पर ही निर्माण हुआ उस चतुर्विध सामाजिक परम्परा का जिसके नियम इसी सिद्धान्त भूमि से समय, काल और परिस्थिति के अनुरूप प्रस्फुटित होते रहे।

इस एक उद्घोष के पश्चात क्या इस प्रश्न का कोई स्थान रह जाता है कि "नारी का जैन धर्म में क्या स्थान है?" फिर भी यदि यह प्रश्न उठा है तो महत्व इस प्रश्न का नहीं है। महत्व है उसके उठने के कारणों का, चाहे वह आज की बात हो अथवा सैकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व की, चाहे वह सामान्य नागरिक की बात हो अथवा सामर्थ्य-वान या चिन्तक की।

जैन आगमों में आत्मिक विकास के मार्ग पर स्त्री और पुरुष में भेद होने के संकेत नहीं मिलते। यह तथ्य जैन समुदाय की तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं को भी परिलक्षित करता है। जैन परम्परा में नारी को अपने स्थान से च्युत करने की प्रक्रिया सर्वप्रथम आत्मिक विकास को अचेलत्व (नग्नतत्व) के साथ आवश्यक रूप से जोड़ने के आग्रह से आरम्भ हुई। यह था पाँचवीं शताब्दि के पश्चात का युग अथवा आगमिक।

"सौ वर्ष की दीक्षिता साध्वी के लिये भी सद्यः दीक्षित साधु वन्दनीय है।" आगमिक व्याख्याओं के युग में जैन समानता पर लगा यह धब्बा आज भी विद्यमान है। पुरुष वर्ग का यह आग्रह अति साधारण व आधारहीन तर्कों पर टिका था और इसे कभी का समाप्त हो जाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये था। आगमिक प्रतिपादनों से विपरीत होने पर भी इतनी लम्बी अवधि तक टिक रह जाना पुरुष वर्ग की दुरभिसन्धि का द्योतक है।

स्त्री के आत्मिक विकास की सम्भावना के विरुद्ध प्रथम तर्क है कि स्त्रीशरीर की संरचना ऐसी है कि उसमें रक्तस्राव एक नियमित प्राकृतिक प्रक्रिया है। रक्तस्राव का आत्मिक विकास से क्या सम्बन्ध है, यह समझना कठिन है। और फिर रक्तस्राव तो एक आयु विशेष तक ही होता है, उसके बाद ? ऐसा ही दूसरा तर्क है कि स्त्री पर बलात्कार हो सकता है इसलिये वह अचेल नहीं रह सकती। क्या सचेल रहने पर बलात्कार नहीं हो सकता ? क्या पुरुष पर बलात्कार नहीं हो सकता ? क्या उस पर होने वाले बलात्कार को परीषह कहकर गौरवान्वित कर देने से वह मोक्ष का अधिकारी हो गया ?

अन्य तर्क बताया गया है कि स्त्री करुणा प्रधान है--तीव्र पुरुषार्थ नहीं कर सकती। यह तर्क अपने आप में ही आधारहीन है क्योंकि यथार्थ सत्य के विपरीत है। जहाँ तक तीव्र पुरुषार्थ का प्रश्न है स्त्री पुरुष से कहीं अधिक तीव्र पुरुषार्थ की संभावना रखती है और पुरुष से कहीं अधिक निर्दय हो सकती है। इतिहास को देखें तो अनगिनत उदाहरण मिल जायेंगे जहाँ स्त्री ने इन दोनों में पुरुष को बहुत पीछे छोड़ दिया है। आगे कहा है कि चंचल स्वभावी होने के कारण स्त्री में ध्यान व स्थिरता का अभाव होता है। तथ्य यह है कि स्त्री की तुलना में पुरुष अधिक क्षेत्रों में चंचल स्वभावी है। ठीक वैसे ही यथार्थ से परे है यह तर्क कि स्त्री में वाद सामर्थ्य और तीव्र बुद्धि का अभाव होता है।

आत्मिक विकास के क्षेत्र की ये आधारहीन धारणाएँ पुरुष ने ही बनाई। वहाँ से यही धारणाएँ नियम बनकर धर्म के क्षेत्र से होती हुई समाज के क्षेत्र में आ गईं। पुरुष को नारी-दासता के लिये बड़ी सशक्त बेड़ियाँ मिल गईं और आरम्भ हो गया उस दमन-चक्र का जिसमें भिन्न परम्पराओं के भेद भूल समस्त पुरुष वर्ग एक हो गया, चाहे वह वैदिक परम्परा का हो, बौद्ध परम्परा का, जैन परम्परा का या अन्य किसी परम्परा का।

दायित्वों का सन्तुलन स्वस्थ परिवार व समाज के लिये अत्यन्त आवश्यक है। परिवार व समाज के बिखराव का कारण इस सन्तुलन का बिगड़ना ही है। पुरुष वर्ग ने जब अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिये नारी-दमन का चक्र आरम्भ किया तभी से यह सन्तुलन बिगड़ता चला गया। आधारहीन तर्क और भी विकसित होकर कुतर्कों में ढल गये। कुछ उदाहरण हैं वे तर्क जो स्त्री के लिये उपयोग में लाये गये हैं पर उपयुक्त हैं पुरुष के लिये। "स्त्रियाँ थोड़े से उपहारों से ही वशीभूत की जा सकती हैं और पुरुषों को विचलित होने में सशक्त होती हैं।" "सन्ध्याकालीन आभा के समान क्षणिक प्रेम वाली और अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर पुरुष का परित्याग करने वाली।" "पाप कर्म नहीं करने का वचन देकर भी पुनः अपकार्य में लग जाती हैं।"

स्त्री की दासता की यह परम्परा जो मूलभूत दार्शनिक सिद्धान्तों के विपरीत थी, निर्बाध चलती गई। विदेशी आक्रमणों की श्रृंखला ने भी उसके अधिक पुष्ट होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मानव समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग सामाजिक अनुशासन के नाम पर दासता के दलदल में धँसता चला गया। उसकी चरम परिणति हुई स्त्री को अबला, ताड़ना के योग्य, नरक का द्वार आदि गर्हित नामों से सम्बोधित करने में।

स्थिति की दयनीयता यह है कि स्वयं नारी का सोचने का तरीका वैसा ही हो गया है जैसा पुरुषप्रधान समाज चाहता है। युगों के दबाव ने उसे अपने आपको पुरुष का सहभोगी मात्र समझने का आदी बना दिया है। वह भूल-सी गई है कि नैसर्गिक यथार्थ यह है कि पुरुष और नारी परस्पर एक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे के सहयोगी हैं। ऐसा नहीं है कि मात्र स्त्री ही पुरुष की सहभोगी है और पुरुष ऐसे किसी भी दायित्व से मुक्त है।

पुरुष ने साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के उपायों से स्त्री को दासता की ओर धकेला है। आवश्यकता पड़ने पर उसे पूजा भी, सोने से लादा भी, सहलाया भी। अन्ततः नारी अपनी पहचान ही भूल गई। पुरुष ने कहा नारी बुद्धिहीन है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह आत्मिक विकास के पथ पर चलने की योग्य नहीं है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि वह जन्म-जन्मान्तर से पुरुष की दासी है और वह मान गई। पुरुष ने कहा कि उसके विकास की चरम परिणति पुरुष के नाम पर बलि दी जाने में है और वह मान कर सहर्ष चिता पर चढ़ गई। पुरुष ने कहा कि वह अबला है और वह मानकर समर्पित होने में ही अपने को धन्य समझने लगी।

नारी जब-जब भी उस निरन्तर जकड़ते धर्म, राज्य तथा समाज के शासन के विरोध में आवाज उठाती है, एक अजीब-सी प्रतिक्रिया सामने आती है—"नारी स्वतन्त्र होने के नाम पर स्वच्छन्द होने की चेष्टा करती है।" स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के बीच की सीमा-रेखा क्षेत्र तय होगा। स्वच्छन्द न होने के नियम क्या केवल नारी के लिये ही हैं ? सामाजिक तथा नैतिक विधानों का पुरुष के द्वारा उल्लंघन क्या स्वच्छन्दता नहीं है ? काल के परिप्रेक्ष्य में देखें तो क्या पिछले पचास वर्षों में पुरुष समुदाय ने सभी सीमा रेखाएँ पार नहीं कर दी हैं ? फिर स्त्री पर ही स्वच्छन्दता की ओर बढ़ने का आरोप क्यों ?

संत्रस्त नारी के भीतर का ज्वालामुखी यदि फूट पड़ता है तब उसके भटक जाने का दोष नारी पर नहीं उसी वर्ग पर है जिसके त्रास ने उसे ज्वालामुखी बना दिया। और यह त्रास मात्र भौतिक या शारीरिक नहीं है। कोई क्षेत्र ऐसा नहीं छोड़ा गया जहाँ नारी को पीड़ित न किया गया हो।

तब उसने समय रहते प्रतिकार क्यों नहीं किया ? क्या स्त्री सचमुच अबला है ? क्या वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से वास्तव में पुरुष की तुलना में हेय है ? नहीं ? यथार्थ तो पारम्परिक मान्यताओं से सर्वथा विपरीत है। पिछले दशक के खेल रिकार्डों को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री ने पुरुष को अनेक क्षेत्रों में पीछे छोड़ दिया है। शरीर के वजन के अनुपात से पता चलता है, वह शरीर सौष्ठव (बाड़ी बिल्डिंग) के हर अंग में पुरुष से स्पर्धा जीत सकती है। दौड़, तैराकी तथा अन्य व्यायामों में उसकी स्पर्धा की क्षमता पुरुष के समान पाई गई है।

बीस वर्ष पूर्व स्त्रियों को डेढ़ मील से अधिक दूरी की दौड़ में भाग नहीं लेने दिया जाता था, यह सोचकर कि इससे उसके शरीर को हानि पहुँचेगी। पाँच वर्ष पूर्व महिलाओं की मेराथन दौड़ ओलम्पिक खेलों में प्रथम बार शामिल हुई। दौड़ने की गति में विकास को देखें तो पाते हैं कि पिछले पन्द्रह वर्षों में महिलाओं ने अपने मेराथन दौड़ के समय में ४० मिनिट की कमी की है जबकि उसी दौरान पुरुष धावक केवल २ मिनिट ही कम कर पाये।

पिछले वर्ष ही बर्फीली हवाओं में हिमांक से ५० डिग्री नीचे के तापमान में ३३ वर्षीय महिला सूसर नबुकर ने १०४९ मील कुत्तागाड़ी दौड़ लगातार तीसरी बार जीती थी। इस दौड़ में विश्व के सर्वश्रेष्ठ पुरुष प्रतियोगी भी शामिल होते हैं। खेल चिकित्सकों तथा मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि स्त्री में लम्बी अवधि तथा दूरी के खेलों के लिए स्वाभाविक शारीरिक व मानसिक अभिरुचि तथा क्षमता होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री शरीर की संरचना में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। इस चर्बी का सर्वाधिक अंश उसके नितम्बों में केन्द्रित होता है। इससे उसका शारीरिक सन्तुलन पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है। स्त्री की मांसपेशियाँ दीर्घ सहनशक्ति की क्षमता लिये होती है तथा शक्ति के लिए वात-कायाग्नि पर निर्भर करती है। उसकी मांसपेशियों के तंतु पतले होते हैं जिससे पोषक तत्त्वों तथा ऑक्सीजन की रक्त तथा कोशिकाओं के बीच रचनान्तर की गति तीव्र होती है। अपेक्षाकृत कम शारीरिक वजन तथा कम ऑक्सीजन को आवश्यकता के कारण उसमें दीर्घकालीन क्रियाशीलता की क्षमता होती है। मांसपेशियों के जोड़ वाले तंतुओं में अधिक लचीलापन होने के कारण उसको चोटग्रस्त होने के प्रति अधिक प्रतिरोधकता होती है। पुरुष की तुलना में स्त्री अभ्यास के दौरान कम थकती है तथा अधिक एकाग्रता बनाये रखती है।

ये सब गुण उसे शारीरिक खेलों के क्षेत्र में अधिक संतुलित प्रगति की ओर ले जा रहे हैं। हाँ पुरुष के मुकाबले उनमें विस्फोटक शक्ति की कमी अवश्य होती है। जिससे कम समय व दूरी तथा विशुद्ध शारीरिक शक्ति वाले खेलों में वह पुरुष से पीछे रह सकती है।

मानसिक व बौद्धिक क्षेत्रों में भी अनेक स्थानों पर स्त्री पुरुष से अधिक सक्षम पाई गई है। विपरीत परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखने की क्षमता स्त्री में पुरुष से अधिक होती है। मानसिक तनाव के जिस बिन्दु पर पुरुष टूट जाता है, स्त्री सहजता से पार कर लेती है। तकनीकी कार्यों में भी वे सभी क्षेत्र जिनमें सूक्ष्म, कलात्मक तथा संवेदनशील कार्य प्रणालियाँ होती हैं, स्त्री पुरुष से अधिक कुशलता प्राप्त कर लेती है।

किसी भी क्षेत्र का अध्ययन करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रकृति ने स्त्री को क्षमता में पुरुष से किसी भी भाँति निर्बल या हेय नहीं बनाया है। सामाजिक विकृतियों तथा पुरुष की दुरभिसंधियों ने उसे निर्बल बना दिया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले पचास वर्षों से नारी की स्थिति में निरन्तर सुधार हुआ है। किन्तु यह सुधार अपेक्षानुसार व्यापक और स्वस्थ है या नहीं इसमें सन्देह है। आज भी स्त्री पर पुरुष की अपेक्षा अत्यधिक अत्याचार होते हैं। आज भी वह अपने आपको असुरक्षित पाती है। आज भी उसे हर कदम पर अपने आपको तैयार करना पड़ता है पुरुष द्वारा नियन्त्रित समाज के विरोध का सामना करने को। आज भी दहेज का दाह और वैधव्य की विडम्बना उसका पीछा नहीं छोड़ते। और ऐसे ही अनेकों कारणों से आज भी उसके जन्म को कोसा जाता है। इतनी भी प्रगति हो गई है कि यह सब खुलेआम कम होता है चुपके-चुपके अधिक। और वह भी इसलिए नहीं कि नारी का वर्चस्व किसी मात्रा में स्थापित हो गया है अपितु इसलिए कि पुरुष की संभ्रान्तता की परिभाषा कुछ बदल गई है।

नारी विकास की इस मंथरगति के पीछे है हमारी सामूहिक कुण्ठित मानसिकता। पराधीनता के सैकड़ों वर्षों ने हमारी संस्कृति के अनेक स्वस्थ अंशों को नष्टप्राय कर दिया था। स्वाधीनता के बाद हम उन्हें पुनः जीवन्त कर पाने की ओर एक कदम भी नहीं बढ़ पाये। कारण है कि आज भी शासन, समाज, शिक्षा आदि सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर नियन्त्रण उसी समुदाय या उसके उत्तराधिकारियों का है जिसकी रचना विदेशी शासन ने शासित समुदाय के शोषण के लिये की थी। इस समुदाय में स्त्री और पुरुष दोनों ही शामिल हैं।

तनिक गहराई में उतरें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे सर्वांगीण विकास में बाधारूपी यह समर्थ समुदाय अन्य सभी क्षेत्रों के समान नारी वर्ग को भी पूर्णतया अपने नियन्त्रण से रखने की चेष्टा में निरन्तर जुटा रहता है। यह चतुर समुदाय भलीभाँति समझता है कि स्वस्थ समाज की रचना स्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाति को उसका उचित स्थान देने पर ही हो सकती है। स्वस्थ समाज की रचना से सर्वाधिक हानि निहित स्वार्थों वाले नियन्त्रक समुदाय की ही होगी। अपने ही स्वार्थों के विरोध में स्वयं ही कौन कदम उठायेगा। और यों ये गुत्थी सुलझने की जगह उलझती चली जाती है। इसका सारा उत्तरदायित्व है उस वर्ग का जो कहीं शासन की बागडोर थामे है तो कहीं धर्म की, कहीं शिक्षा की नीति निर्धारक बना बैठा है तो कहीं सामाजिक रीति-रिवाजों का।

सचमुच यदि नारी की स्थिति सुधारनी है तो समर्थ तत्वों को स्वार्थ त्याग करना होगा और सामान्य तत्वों को अपनी कुंठित मानसिकता को दूर करना होगा। इस कुंठा से पुरुष और स्त्री दोनों ही पीड़ित हैं। कोई भी एकांगी उपाय समस्या को जटिल ही करेगा। नारी-मुक्ति का अर्थ यदि उसे मानवीय समाज में उसके अपने स्वाभाविक स्थान पर पुइस्र्थापित करना है तब तो उसकी दिशा स्वस्थ है। किन्तु यदि उसका अर्थ मात्र घर से निकलकर सड़क पर आ जाना है तो वह एक कुंठा से निकल कर दूसरी कुंठा में फंस जाने से अधिक कुछ नहीं है।

मातृत्व स्त्री की प्राकृतिक त्रिया है। पुरुष ने उसके इस प्राकृतिक गुण को उसकी निर्बलता के रूप में स्थापित कर दिया और वह आज भी उस मानसिकता से उबर नहीं पा रही है। इसका समाधान खोजने के लिये यदि वह मातृत्व से घृणा कर उससे परे हटेगी अथवा उसे गौण करेगी तो मात्र उसकी ही नहीं समस्त मानवता की हानि होगी। उसे यह समझना होगा कि जिसे वह अपनी सबसे बड़ी निर्बलता का स्रोत समझ बैठी है वह है उसकी सबसे बड़ी शक्ति जो प्रकृति ने उसे दी है।

प्रजनन की प्रक्रिया में नारी का अंश अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो भविष्य के समाज का भार अधिकांशतः नारी पर है। सर्जनात्मक प्रक्रियाओं के अन्त के साथ समाज के भविष्य का अन्त होना निश्चित है। माँ के बिना संतान नहीं, संतान के बिना वंश नहीं और वंश के बिना भविष्य का समाज नहीं। इस सर्जन का उत्तरदायित्व मात्र भौतिक क्रिया-कलाप तक ही सीमित नहीं है। माँ सन्तान को जन्म ही नहीं देती, उसकी सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिक्षिका भी होती है। इतिहास उठाकर देखें और निराग्रह विश्लेषण करें तो प्रतीत होगा कि नारी के अपने नैसर्गिक स्थान से धकेल दिये जाने के साथ-साथ आरम्भ हुआ है, मानव जाति में मानवीयता के ह्रास का इतिवृत्त।

मानवता को निरन्तर जटिल होती आतंकवाद, नशीली दवाओं के सेवन, पर्यावरण आदि की समस्याओं से यदि कोई उबार सकता है तो वह है नारी। आज का समाज तो अपने विकृत आग्रहों से मुक्त हो सकेगा यह कठिन लगता है। कल के नागरिकों से ही आशा की जा सकती है कि वे विश्व को विकास की सम्यक् दिशा दें। और कल के नागरिक का निर्माण करने वाली है केवल स्वस्थ मानसिकता व आत्म-विश्वास लिये सुशिक्षित, सुसंस्कारी ब साहसिक नारी।

वह नारी जो न तो अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व का बलिदान व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिए करती है और न परिवार के लिये अपनी महत्वाकांक्षाओं का गला घोंटती है। वह नारी जिसके नारीत्व में तो कोई कमी नहीं है किन्तु जो निर्बल नहीं है। बह नारी जो स्वाभिमानिनी है किन्तु हीन भावना से प्रेरित मिथ्याभिमान के आग्रह से ग्रसित नहीं है। वह नारी जो न तो पुरुष की दासी है न उसे अंगुलियों पर नचाने वाली नायिका अपितु है कधे ने कंधा मिला मानवीय बिकास के पथ पर बराबर के कदम उठा चलने वाली सहधर्मा।

जैनागमों के मूल प्रतिपादन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, क्योंकि वे उन कतिपय विचारधाराओं के प्रतिनिधि हैं जिन्होंने नारी को सहज समानता की दृष्टि से देखा है। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org